श्रीमान कुंवर वीरेन्द्र कान्त सिंह जू देव वर्म्मा

* श्री *

भूमिका

प्रिय पाठक गण !

आज आप लोगों की सेवा में सद-उपदेश धर्म रहस्य गुटिका नाम की छोटी सी पुस्तक उपस्थित है। इसमें न कोई रोचक कथा, व किस्सा कहानी है (जिसे प्रायः अधिक तर पसन्द करते हैं) किन्तु यह प्राचीन ऋषियों के अनुभव सिद्धि ज्ञानामृत उपदेशों का सार है। आज हम लोग उनके सद-उपदेशों को भूल कर धार्मिक, सामाजिक व नैतिक वल को तिलांजुलि देकर संसार में हास्य के भाजन बन कर पशुवत जीवन व्यतीत कर रहे है, इसका मूल कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव ही होसकता है। जो शिक्षा दी जाती है वह विदेशी भाषाओं में होती है जिनसे हमारे नवयुवकों को प्राय- अपने धार्मिक ग्रन्थों से अरुचि सी होजाती है यद्यपि वर्तमान समय में संस्कृत व हिन्दी की बहुत सी बड़ी २ धार्मिक पुस्तकें मौजूद हैं परन्तु सर्व साधारण में संस्कृत विद्या का अभाव तथा सांसारिक कार्य्यों से अनावकाश के कारण बृहत ग्रन्थों का पढ़ना दुष्कर हो रहा है अतः यह छोटी सी गुटिका जिसमें सभी श्लोकों को मंत्र तुल्य कहे जासकते हैं जिसके पढ़ने के साथ ही चित पर असर पहुंचता है यह मेरा स्वयं अनुभव है यदि ध्यान पूर्वक पढ़कर कर्त्तव्य पालन किया जावे तो मनुष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है। इस

पुस्तक में विषेषतया उन्नति, उदारता सुशीलता,दया क्षमा,प्रेम तथा धार्मिक भावों से भरे हुये संग्रहीतश्लोक है। अतः उन महानुभावों से प्रार्थना है जो अपनी संतानो को शिक्षित और सच्चरित्र बनाने के लिये सहस्रों रुपये खर्च कर डालते हैं परंतु सफल मनोरथ नहीं होते, ऐसे महानुभाव अपनी संतान को अवश्य पढ़ावें, तब देखें उनका मनोरथ कितना शीघ्र सफल होता है। सो क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या स्त्री, क्या पुरुष क्या दीन क्या धनाढ्य सभी से मेरा सादर अनुरोध है कि वे एक बार अवश्य एकाग्र मन से पढ़ें और लाभ उठाकर मनुष्य जीवन को सफल करैं यदि धार्मिक प्रेमी इससे कुछ भी लाभ प्राप्त करैंगे तो अपने परिश्रम को सफल समझूंगा। यदि कुछ त्रुटियां तथा अशुद्धियां रह गई हो तो क्षमा करियेगा मेरा यह प्रथम प्रयास है। चाहे यह विद्वान लोग इन त्रुटि पूर्ण ही ही पावें या केवल संग्रहीत ही समझें किन्तु मैंने इसे इस लिये लिखा है कि सर्वसाधारण लोगों में भी धार्मिक भावों का प्रचार हो और साधारण ज्ञान लाभ करैं और अज्ञान में जो वे दुष्कर्म करते हैं उनसे बचे रहैं। यही मेरी हार्दिक इच्छा है और ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इसके पढ़ने वालों को आत्म बल दे जिससे वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त करैं। इत्यलम्

विनीत

मातृदत्त

ओ३म्

विघ्नध्वान्तनिवारणैक तरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाट् ।
विघ्नव्याल कुलोपमर्द्द गरुड़ोविघ्नेभ पंचाननः ॥
विघ्नोतुङ्ग गिरिप्र भेदन पविर्विघ्नाब्धि कुम्भोद्भवो ।
विघ्नाघौघ घनप्रड पवनो विघ्नेश्वर-पातुनः ॥ १ ॥

भावार्थः—विघ्न रूपी अन्धकार के नाश करने के लिये आप सूर्य्य हो । विघ्न रूपी वन को जलाने के लिये आप अग्नि हो विघ्न रूपी सर्प को हनन करने के लिये आप गरुड़ हो । विघ्न रूपी हाथी को ग्रास्त करने के लिये आप सिंह हो । विघ्न रूपी पर्वत का काटने के लिये आप वज्र हो । विघ्न रूपी समुद्र को सोखने के लिये आप अगस्त मुनि हो । विघ्न रूपी मेघ के नाश के लिये आप प्रचंड वायु हो। हे विघ्नेश्वर गणेश हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

याकुन्देदु तुषार हार धवला या शुभ्र वस्त्रावृता ।
यावीणा वरदंडमण्डित करायाश्वेत पद्मासना ॥
या ब्रह्माच्युतशङ्कर प्रभृति भिर्देवैस्सदा वन्दिता ।
सामां पातुसरस्वती भगवती निश्शेषजाड्यापहा ॥२॥

भावार्थ—जिसका पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार है श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और जिसके कर बीणा से सुशोभित हैं उज्ज्वल कमल पर आसन है जिनकी ब्रह्म विष्णु शिवादि देवता सदैव वन्दना करते हैं तथा जो मूर्खता को नाश करने वाली हैं। ऐसी विश्वस्वामिनी सरस्वती हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

तदेवलग्नं सुदिनंतदेवताराबलं चन्द्रबलं तदेव विद्याबलं दैवबलं तदेवलक्ष्मीपते तेंऽङ्घ्रि युगंस्मरामि ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो लक्ष्मी पति विष्णु सुलग्न सुदिन ताराबल चन्द्रबल बिद्याबल, दैवबल हैं उनके दोनों चरणों का स्मरण करता हूं ॥ ३ ॥

शैशवे भ्यस्त विद्यानाम् योबने विषयीषणाम् वार्ध्यके मुनिवृत्तिनाम् योग्रान्तेनतनुम् त्यजाम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्राणी मात्र का कर्तव्य है कि बाल्यावस्था में विद्या अध्ययन करें युवा अवस्था में गृहस्थाश्रम धर्म का पालन करे वृद्धा अवस्था में वाणप्रस्थ धारण करे। और अन्त में योगाभ्यास करते हुये शरीर त्याग करे ॥ ४ ॥

१ ब्रह्मचर्य्य

आचारः प्रथमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवच ।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तानिश्चयेदात्मवान् द्विज॥१॥

भावार्थ—प्रथम धर्म आचार है। यही मत श्रुति स्मृति का है इस कारण से निश्चय करके सदा युक्त रहना चाहिये ॥ १ ॥

आचाराद्विच्युतो विप्रोनवेद फल मश्नुते ।
आचारेणतु संयुक्ता सम्पूर्ण फल भाग्भवेत् ॥२॥

भावार्थ—आचार से जो प्राणी च्युत रहता है वह वेद के फल का भागी नहीं रहता है। जो प्राणी आचार संयुक्त कार्य करता है वह सम्पूर्ण फलों का भागी रहता है ॥ २ ॥

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः, सत्यव्रता रहित मानमलापहाराः संसारदुःखदलनेन सुभूषितायै, धन्यानरा विहितकर्म परोपकाराः ॥ मनु० ३ ॥

भावार्थ-विद्या, शील, शिक्षा, को जो पुरुष धारण करने वाला होता है और मानसे रहित पुरुष के पातक का नाश होजाता है संसारी दुःख के हटाने के लिये जो सदा परोपकार में दक्ष होता है वह पुरुष धन्य है ॥ ३ ॥

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति,
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥४॥

भावार्थ—जल से शरीर पवित्र होता है, सत्य भाषण करने से मन पवित्र रहता है विद्या व तप करके जीवआत्मा शुद्ध रहता है ज्ञान करके बुद्धि शुद्ध रहती है ॥ ४ ॥

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥५॥

भावार्थ—जो ध्यान करने वाला पुरुष है, उसके पातक का नाश होजाता है जिस प्रकार से धातु के पात्रों को मलने से मैल छूट जाती है। इसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के दोष मिट जाते हैं ॥ ५ ॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियतेतनुः ॥६॥

भावार्थ—स्वाध्याय पठन पाठन करके (व्रत ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि करके (होम) अग्नि होत्रादि करके (त्रैविद्या अर्थात कर्म उपासना ज्ञान करके (इज्या) अर्थात जो परमात्मा का पूजन करता है और (महायज्ञ) अर्थात ब्रह्मयज्ञ, पितृतर्पण, बलिवैश्वदेव, हवन, अतिथिसत्कार और अग्निष्टोम् यज्ञ करता है वह पुरुष (ब्रह्मनिष्ठ) अर्थात ब्रह्मचारी होता है ॥ ६ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्व पहारिषु संयमे ।
यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् । ७ ।

भावार्थ—जो इन्द्रियां विषय की कामना में फिरा करती हैं । उनको संयम, मन की बुद्धी कर फेरै अर्थात रोकै (किस तरह से) जैसे कि बुद्धिमान सारथी रथ के घोड़ों को लगाम द्वारा वस में रखता है ॥ ७ ॥

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम् ।८।

भावार्थ—जो मनुष्य सदा वृद्धों को प्रणाम करता है और सेवा करता है। उस पुरुष का आयु, विद्या यश और बल बढ़ता है

अहरहः सन्ध्या मुपासीत-इतिश्रुतिः ।९।

भावार्थ—नित्य प्रति सन्ध्या करना चाहिये सन्ध्या का त्याग कभी नहीं है ॥ ९ ॥

विप्रोवृक्षः मूलतोयस्यसन्ध्या वेदशाखा धर्म
कर्माणिपत्रं तस्मान मूलं यत्नतोरक्षणीयं छिन्ने
मूलेनैव पत्रोन शाखा ।१०।

भावार्थ—ब्राह्मण वृक्ष रूपी है इस वृक्ष की (मूल) जरि सन्ध्या है, वेद शाखा और धर्म कर्म पत्ते हैं, इस कारण से इसका

मूल जो सन्ध्या है उसको सदा सुरक्षित रखना चाहिये अन्यथा कि जिस वृक्ष का (मूल) जड़ कट जाता है उसके फल पत्ते सभी नाश होजाते हैं ॥ १० ॥

नतिष्ठतियः पूर्वाम् नउपासते यस्तु पश्चिमां
सशूद्रवत् वहिष्कार्यः सत्रस्माद्विजकर्मणः ॥११॥

भावार्थ—जो द्विज प्रातः काल व सायंकाल का संध्या नही करता है उस को शूद्र के समान पंक्ती से बाहर करना चाहिये ॥११॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते
धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणंपरमंश्रुतिः ॥१२॥

भावार्थ—जो पुरुष सुवर्णादि रत्नों में और स्त्री सेवनादि में नहीं फंसते उन्हीं को ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

योऽनधीत्य द्विजोवेदमन्यत्र कुरुतेश्रमम् ।
सजीवन्नेवशूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयः ॥१३॥

भावार्थ—जो वेद को न पढ़ करके अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ॥ १३ ॥

वर्जयेन्मधु मांसञ्च गन्धं माल्यंरसान्स्त्रियः ।
शुक्तानि यानिसर्वाणिप्राणिनां चैव हिंसनम् ॥१४॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी मद्य, मांस, गंध, माला, रस स्त्री पुरुष का संगसब खटाई प्राणियों की हिंसा ॥ १४ ॥

अभ्यङ्ग मञ्जनंचाक्ष्णोरुपानच्छत्र धारणम् ।
कामं क्रोधंचलोभंच नर्त्तनं गीतवादनम् ॥ १५ ॥

भावार्थ—अंगों का मर्द्दन बिना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श आंखों में अंजन जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय शोक, ईर्षा, द्वेश, नाच, गान और बाजा बजाना ॥ १५ ॥

द्यूतं च जनवादंच परिवादं तथाऽनृतम् ।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुप घातं परस्यच ॥१६॥

भावार्थ—जुआ, जिस किसीकी कथा, निन्दा मिथ्याभाषण स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें ॥ १६ ॥

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्
कमाद्धि स्कन्दयंत्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ १७ ॥

भावार्थ—सर्वत्र अकेला सोवे, वीर्य्य पात कभी न करे जो कामना से वीर्य स्खलित करदे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत का नाश कर दिया ॥ १७ ॥

आलस्यंमधु मोहौ च चापलं गोष्ठिरेवच ।
स्तब्धता चाभि मानित्वं, तथा त्यागित्यमेव च॥
येतेवै सप्तदोषाःस्युःसदा विद्यार्थिनाम्मता:॥१८॥

भावार्थ—आलस्य, मद, मोह, चपलता बहुत बात करना चुप रहना अभिमानी, गृह को न छोड़ना, इन सात दोषों को विद्यार्थी त्याग दें ॥ १८ ॥

सुखार्थीना कुतोविद्या, विद्यार्थिनो कुतोसुखँ ।
सुखार्थीवात्यजेत्विद्या विद्यार्थीवात्यजेतसुख॥१९॥

भावार्थ—सुख चाहने वाले को विद्या, और विद्यार्थी को सुख नही होसकता हैं । सुख की इच्छा करने वाला विद्या को त्यागता है, और विद्यार्थी सुख को त्याग देता है ॥ १९ ॥

सत्येरतानां सतत दांतानां मूर्द्ध रेतसां ।
ब्रह्मचर्य्यदहे द्राजन् सर्वपापान्यु पासितं॥ २०॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचारी निरन्तर सत्य भाषण करता है और ऊर्ध्वरेता होता है । ऐसे उपासना करने वाले का सम्पूर्ण पाप भस्म होजाता है ॥ २० ॥

रूप योबन सम्पन्ना, विसाला कुल संभवा।
विद्याहीना न सोभन्तेनिर्गन्धां इवकिंसुकाः॥२१॥

भावार्थ—रूप योवन से उत्तम हो, उत्तम कुल में जन्म हो पर विद्या से हीन पुरुष शोभा को नहीं प्राप्त होता जैसे पलास फूल देखने में उत्तम होता है पर गन्ध से रहित होने से कोई ग्रहण नहीं करता।

गृहस्थाधर्म

गुरुणानुमतस्नात्वा, समावृत्तोयथाविधि।
उद्वहे द्विजो भार्य्या, सवर्णा लक्षणाँन्विताम॥१॥

भावार्थ—गुरु की आज्ञा लेकरके यथा विधि स्नान करके समावर्त्तन करे और सम्पूर्ण लक्षणों से संयुक्त अपने वर्ण के कन्या से विवाह करे।

सन्तुष्टो भार्य्यया भर्ता, भर्त्राभार्य्यातथैवच।
यस्मिन्नेवकुले नित्यँ, कल्याणँतत्रवैध्रुवम्॥२॥

भावार्थ - जोस्वामी अपने स्त्री से सन्तुष्ट होता है और स्त्री अपने स्वामी से सन्तुष्ट होती है तो उसके कुलका निश्चय करके कल्याण होता है।

अध्यापनं अध्ययनँ, यजनँ याजनम्तथा ।
दानँप्रति ग्रहश्चैव, ब्राह्मणा नाम कल्पयेत ॥३॥

भावार्थ—यज्ञ करै यज्ञ करावे, पढ़े पढ़ावें, दान देय, दान लेय, यह छः कर्म ब्राह्मण के हैं।

प्रजानां रक्षणांदान मिज्याध्येन मेवच ।
विषयेष्व प्रशक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥४॥

भावार्थ—प्रजा का रक्षा करना दान यज्ञ अध्यन करना, विषय में लिप्त न होना, यह क्षत्रिय का धर्म है।

पशूनां रक्षणंदान मिज्याध्येन मेवच ।
वणिक पथँ कुसी दँच वैश्यश्च कृषि मेवच ॥५॥

भावार्थ—गऊ का पालन, दान, विद्या धर्म की वृद्धि करने व कराने के लिये धनादि का व्यय करना, यज्ञादि कार्य्यं का करना और व्यापार करना ब्याज लेना खेती करना यह वैश्य के गुण कर्म

एकमेवतु शूद्रस्य, प्रभुः कर्म समादिशत ।
एतेषा मेव वर्णानां, शुश्रूषा मन सूयया ॥६॥

भावार्थ—शूद्र को उचित है निन्दा ईर्षा, अभिमान आदि दोषों का छोड़ के ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन करना यही एक शूद्र का गुण कर्म है।

सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात सत्यमप्रियं
प्रियंचन नृतं ब्रूया द्वेष धर्मं सनातना ॥७॥

भावार्थ—सत्य भाषण करै प्रिय भाषण करै अप्रियन भाषण करै यदि झूठा है तो प्रिय भी न भाषण करै यह सनातन धर्म है।

भद्रँ भद्रँ इति ब्रूयातभद्र मित्येव वावदेत
शुष्क वैरं विवादंच नकुर्यात केन चित्सह॥८॥

भावार्थ—उत्तम भाषण करने वाले पुरुष से उत्तम भाषण करना चाहिये सूखा अथवा विना प्रयोजन के किसी से वैर व विवाद न करै।

बुद्धि बृद्धि करान्याशु धान्यानिच हितानिच ।
नित्यँ शास्त्राण्यवेक्षेत निगमाश्चैंववैदिकान॥९॥

भावार्थ—नित्यही शास्त्र अवलोकन करने से बुद्धि और धान्यादिक हित वस्तुओं की बृद्धि होती है।

यथा यथाहि पुरुषः शास्त्रँ समधि गच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानँ चास्यरोचते॥१०॥

भावार्थ—जैसे २ पुरुष शास्त्र पढ़ता है वैसे२ विज्ञान को प्राप्त होता है अर्थात शास्त्र पढ़ने ही से मनुष्य विज्ञान सीख सकता है।

ऋषियज्ञंदेवयज्ञं, भूतयज्ञंच सर्वदा ।
नृयज्ञँपितृयज्ञँच, यथाशक्तिनहापयेत ॥११॥

भावार्थ—ऋषि यज्ञ अर्थात संध्या वन्दनादि कर्म देव यज्ञ हवनादि भूत यज्ञ अर्थात बलि वैश्व देव अतिथि सत्कार पितृ सेवा तर्पणादि सर्वदा यथा शक्ति नित्य प्रति करना चाहिये ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्च तर्पणं ।
होमोदेवो वलोर्भवतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥१२॥

भावार्थ—(स्वाध्याय) अर्थात् ब्रह्म यज्ञ तर्पण होम बलि वैश्व देव अतिथि सत्कार नित्य प्रति अवश्य करना चाहिये ।

शुनाञ्च पतितानाञ्च श्वपचां पापरोगिणां ।
वायसा नांच कृमिणांच शनकै निर्वपेद्भुवि॥१३॥

भावार्थ—कुत्ते, पतित, चांडाल, पापी, रोगी, कौआ कीड़ा गृहस्थाश्रम का धर्म है कि भोजनार्थ अन्न जो बनै उसमें से इन सबों को भाग देवै ।

ब्राह्मे मुहूर्तेबुध्देत धर्माथोंचानु चिन्तयेत ।
काय क्लेशास्चतन् मूलान् बेद तत्वार्थमेवच॥१४॥

भावार्थ—प्रातःकाल ब्राह्मो मुहूर्त में उठ कर धर्म अर्थ

शारीरिक सुख वेद विहित कार्य का स्मरण करना अथवा विचार करना चाहिये।

नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता चतिश्ठतः।
नपुत्र दारं नज्ञातिर्धर्मस्ति ष्ठति केवलः ॥१५

भावार्थ—शरीरान्त होने पर पिता, माता, बंधु. पुत्र, दारा ये लोग सहायता नहीं कर सकते केवल धर्म ही सहायता करता है।

दुराचरोहि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागीचसनतं व्याधितो अल्पायुरेवच ॥१६

भावार्थ—अधर्मी पुरुष की लोक में निन्द्या होती है वह बारम्बार दुःख का भागी होता है और व्याधि से पीड़ित होकर अल्पायु को प्राप्त होता है अर्थात् शीघ्र मर जाता है।

एकः पापानिकुरूते फलं भुञ्क्ते महाजनाः
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यतें१७

भावार्थ—अकेला पुरुष पाप को करता है उससे जो धनादि प्राप्त होता है सारा कुटुम्ब भोगता है परन्तु उस पाप का भोगने वाला परिवार नहीं होता सिर्फ पाप करने वाला भोगता है।

मृतंशरीर मुत्सृज्य काष्ठ लोष्ठ समंक्षितौ
विमुखा बान्धवायान्ति धर्मस्तामनुगच्छति १८

भावार्थ—मरे हुए शरीर को काष्ठ और इंटकी के समान जमीन में फेंक देते हैं पुत्र बन्धु मित्र सब मुंह फेर कर अपने घर चले जाते हैं खाली धर्म ही साथ जाता है।

तस्मात् धर्मसहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः
धर्म्मेणाहि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम १९

भावार्थ—इसी कारण से सहाय करने के लिये प्रति दिन धम का विचार करना चाहिये अर्थात् मेरा धर्म और कर्त्तव्य क्या है धर्म ही के सहाय से महान अन्धकार रूपी संसार से जीव तर जाता है।

आत्म ज्ञानंसमा रम्भस्तितिक्षा धर्मं नित्यता
यमर्था नपिकर्षन्ति सवै पण्डित उच्येत २०

भावार्थ—जो पुरुष आत्मा में प्रमात्मा को जानता है। और सहन सील होता है और इन्द्रियों के विषय में नहीं लिप्त होता है वही पंडित है अर्थात् ज्ञानी है।

निमेवते प्रंसस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्धान एतत् पण्डित लक्षणम्॥ २१

भावार्थ—सदा धर्म युक्त कर्मों का सेवन और अधर्म युक्त कर्मों का त्याग सदाचारी श्रद्धावान होना यह पंडित का लक्षण है।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव सास्वतः ।
नित्यं सान्नहतो मृत्यु कर्त्तव्यो धर्म संग्रह ॥२२

भावार्थ—शरीर अनित्य है धन हमेशा नहीं ठहरता नित्य ही मृत्यु सन्निकट प्राप्त रहती है इस कारण से धर्म के संग्रह करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये।

यावत् स्वस्थ मिदं देहं यावतमृत्यु स्च दूरतः ।
तावदात्म हितं कुर्यात् प्राणान्ते किंकरिष्यति॥२३

भावार्थ—जब तक यह देह बनी रहै और जब तक मृत्यु न प्राप्त हो तब तक आत्मा के हित के लिये धर्म को करना चाहिये मरण हो जाने पर कुछ नहीं कर सकते हो पछताना पड़ेगा।

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भये न नीचैः ।
प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्या ॥
विघ्नैः पुनः पुनरपि हन्य मानाः ।
प्रारभ्य मुत्तम जनाः न परित्य जन्ति ॥२४॥

भावार्थ—नीच मनुष्य विघ्न के भय से धर्म सम्बंधी कार्य को आरम्भ ही नहीं करते और मध्यम पुरुष कार्य को आरम्भ करते हैं परन्तु विघ्न आने पर तुरंत छोड़ करके भाग जाते हैं और उत्तम पुरुष आरम्भ करने के बाद चाहे बार २ विघ्न प्राप्त हो पर बिना पूरा किये कार्य को नहीं छोड़ते।

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति चलसुनं चन्दनैरिंधनाद्यैः
सौवर्णे लाङ्गलाग्रे विलखति वसुधा मर्क मूलस्य हेतो
छित्वा कर्पूर खण्डान् वृत्तिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्
प्राप्येमां कर्मभूमिं चरत मनुजो पस्तो पसे मन्द भाग्यः २५

भावार्थ—रत्न की बटुली पाकर लहसुन पकाना अधर्म है चन्दन की लकड़ी पाकर चूल्हा में झोंकना अनुचित है सोने का हल पाकर बोने के वास्ते ज़मीन का जोतना अनरगल है केलों के वृक्षों को काट करके कोदों को नहीं बोना चाहिये यह नर देह रत्न की बटुली है और चन्दन की लकड़ी है और सोने का हल है इस देह से खराब काम करने से फिर नहीं संभलता

इससे मनुष्य देह पाकर धर्म का कार्य न कर लिया सो मूर्ख और हत भाग्य हैं मानो रत्न के बटुलों में लहसुन का पकाना है

प्राणाघातान्निवृतिः परधन हरणे संयमः सत्य वाक्यं।
काले शक्त्या प्रदानं युवति जन कथा मूकभावःपरेषां॥
तृष्णा श्रोतोभिभङ्गः गुरुषु च विनयः सर्व भूतानु कम्पा।
सामान्यःसर्वशास्त्रे ष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेषपंथाः२६

भावार्थ—किसी को दुःख न देना, परधन हरन नहीं करना सत्य बोलना गरीबों को यथा शक्ति दान करना, पराए स्त्री से अनुचित बातें न करना तृष्णा को रोकना, अपने बड़े से नम्र रहना, प्राणी मात्र पर दया रखना, सब शास्त्रों के मत को समभाव देखना यह कल्याण का देने का रास्ता है।

अष्टादस पुराणानां सारं सारं समुध्रितं ।
परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीड़नं ॥२७॥

भावार्थ—अठारहों पुराण का मत है कि परोपकार के बराबर कोई पुण्य नहीं और दूसरे को दुःख देने के बराबर पाप नहीं होता।

अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतं ॥२८॥

भावार्थ—क्रोध न करके क्रोधी को जीते और दुष्टों का सज्जनता से जीते कृपण को कुछ देकर जीते झूठ बोलने वाले को सत्य कर के जीत लेवे।

सुखंवा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वा प्रियं।
प्राप्तं प्राप्त मुपासीत् हृदये न पराजितः ॥२९॥

भावार्थ—सुख हो अथवा दुःख हो प्रिय हो अथवा अप्रिय हो प्राप्त हो अथवा अप्राप्त हो हृदय से इस का दुःख नहीं मानना चाहिये समभाव से रहना चाहिये।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिनां बुद्धि जीवनः।
बुद्धि मत्सु नरः श्रेष्ठा नराणां ब्राह्मणास्मृताः॥
ब्राह्मणेषुच विद्वांसः विद्वत्सु कृत बुद्धया।
कृत बुद्धषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्म वादिनः ॥३०॥

भावार्थ—भूत जो संसार है उसमें प्राणी अर्थात जीव धारी श्रेष्ठ है प्राणियों में जो बुद्धि करके जीवित हैं वे श्रेष्ठ हैं बुद्धि से जीने वालों में मनुष्य श्रेष्ठ है नरों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है ब्राह्मणों में विद्वान श्रेष्ठ हैं विद्वानों में बुद्धिमानी से जो कार्य करने वाले हैं वे श्रेष्ठ हैं बुद्धिमानों में जो उत्तम कर्म करने वाले हैं वे श्रेष्ठ हैं कर्म करने वाले से ब्रह्म ज्ञानी श्रेष्ठ हैं।

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च,
सामान्य मेतत् पशुभिः नंराणां ।
धर्मोहि ेषा मधिको विशेषो,
धर्मे न हीनो पशु भिस्समानाः ॥३१॥

भावार्थ—भोजन करना, शयन करना, डेराना, मैथुन (अर्थात् स्त्री प्रसंग करना) पशु और मनुष्य में बराबर गुण होते हैं केवल पुरुष में एक अधिक होता है कि उसमें धर्म का ज्ञान होता है यदि पुरुष धर्म से हीन है तो पशु के समान जानना चाहिये ।

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि परं हितं ।
यद् भूत हितं सत्यँ येतत् सत्यं मतँमम् ॥३२॥

भावार्थ—सत्य वचन कल्याण करता है । सत्य से बढ़ कर परोपकार कल्याण कारक है जो वाणी संसार को सुख देने वाली है वही वाणी सत्य कहाती है ।

सत्ये न धार्य्यते पृथिवी सत्ये न तपते रविः ।
सत्ये न वाति वायुस्च सर्वं सत्यँ प्रतिष्ठतम् ॥३३॥

भावार्थ—सत्य करके पृथ्वी धारण करती है सत्य ही से सूर्य्य तपता है सत्य ही से वायु चलती है सब चीजें सत्य ही में प्राप्त हैं ।

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजन शौच मार्जवम ।
ब्रह्मचर्य्य महिंसाच शारीरं तप उच्यते ।३४।

भावार्थ—देवता ब्राह्मण अथवा द्विजाति और अपने से श्रेष्ठ और सत्यपुरुष इनका सत्कार करना पवित्रता सीधा पन और ब्रह्मचर्य्य और किसी को दुःख न देना यह शरीर का तप धर्म है ।

अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रिय हितँ च यत् ।
स्वाध्याय भ्यसनँ चैव वाङ्मयँ तप उच्यते ॥३५॥

भावार्थ—किसी को दुःख देने वाली वाणी न बोलना और सत्य को परोपकारी हो ऐसी वाणी सदा बोलना और सदा कुछ पढ़ते पढ़ाते रहना यह वाणी का तप और धर्म है ।

मनः प्रसादं सौम्यँयत् मौन मात्म विनिग्रह ।
भाव संसिद्धिरिसेतत् तपो मानस उच्यते ।३६।

भावार्थ—मन को प्रसन्न रखना, सरलता से निर्वाह करना, युक्त वाणी बोलना इन्द्रियों को अपने वश में रखना सर्व जनों में उत्तम भाव रखना यह मन का तप और धर्म है ।

काम येष क्रोध येष रजोगुण समुद्भवः ।
महा सनो महा पाप्मा विद्धिन मिहवैरिणं ॥३७

भावार्थ— काम क्रोध की उत्पत्ति रजोगुण से हैं यह दोनों महापापी हैं कभी तृप्त नहीं होते बुद्धिमान पुरुष इनको शत्रु करके मानै।

त्रिविधः नरक स्येदं द्वारं नाम न मात्मनः
कामः क्रोधःतथा लोभः तस्मा देतत् त्रयंत्यजेत्३८

भावार्थ —काम, क्रोध, लोभ ये तीन नरक को देने वाले हैं इस कारण से काम, क्रोध लोभ को त्याग कर देना चाहिये।

इन्द्रियाणि पराण्यहुरिन्द्रिये भ्यः परं मनः
मनमस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धेः रतस्तुसः ३९

भावार्थ—इन्द्रियों के ऊपर मन है मन के ऊपर बुद्धि है बुद्धि के ऊपर कामना है।

एंव बुद्धेः परं बुध्वा संस्तभ्या त्मान मात्मनः।
जहि शत्रु महा वाहो काम रूपँ दुरापदँ॥४०॥

भावार्थ—कृष्ण भगवान कहते हैं कि हे! अर्जुन इससे कामना को बुद्धि से ऊपर जान करके और अपने बुद्धि करके मन को रोक के काम रूपी महा शत्रु को पछाड़ करो।

अभय सत्य संशुद्धि र्ज्ञानि योग व्यव स्थितिः ।
दानं द्मस्च य ज्ञस्च स्वाध्याय स्तप मार्जवम् ॥४१
अहिंसा सत्यम क्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
द्या भूतेष्व लोलुप्तं मार्दव ह्री चापलम् ॥४२
तेजः क्षमा धृतिः शौच मद्रोहो नाति मानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवी मभि जातस्य भारत ॥४२

भावार्थ—जो पुरुष अभय रहता है शुद्धात्मा होता है ज्ञान योग का उपाय किया करता है दान देने में लगा रहता है इन्द्रियों को वश में रखता है यज्ञादि कर्म को करता रहता है और पढ़ा पढ़ाया करता है और ईश्वर का स्मरण करता रहता है सीधापन से निर्वाह करता है ।

किसी को दुःख नहीं देता सत्य वर्ताव करता क्रोध को कब्ज़े में रखता मन किसी में लिप्त नहीं होता शान्ति रहता किसी की चुगली व निन्दा नहीं करता संसारी जीवों पर दया रखता सब बातों में अति शीघ्रता नहीं करता और हमेशा जिसका दिल दया वग़ैरह से भीगा रहता लज्जावान होता व्यर्थ बातें बहुत नहीं करता ।

शीलवान होता सहन करता धीरज रखता पवित्र रहता किसी से द्रोह नहीं करता मान प्राप्ति के वास्ते अति मान नहीं

करता यह १६ गुण हैं। जो स्वर्गवासी देवताओं के श्रेणी से आकर मृत्यु लोक में जन्म लिया उनके ये चिन्ह हैं।

दंभो दर्पोभि मानश्च क्रोधः पारूष्य मेवच्च।
अज्ञानं चाभि जातस्य पार्थ सम्पद मासुरीम ॥४४

भावार्थ—पाखंडी होना, अपने बल को व्यर्थ दूसरे को दिखलाना बहुत मानी होना क्रोधी होना दूसरे को भय देने वाली वाणी बोलना ये गुण अज्ञान से होते हैं जो पुरुष राक्षस के पंक्ति से आकर जन्म लिया है उसके ये चिन्ह हैं।

दातव्य मितिय द्दान दीयते नुप कारिणे।
देशे काले च पात्रे, चतत् दानं सात्विक मस्मृत।४५

भावार्थ— जो दान देश काल पात्र देखिके और बिना अपने उपकार करने वाले को दिया जाता है वह दान सतोगुणी कहाता है।

यत्तु प्रत्युपकाराय फल मुदिश्य वा पुनः।
दियते च परि क्लिष्टं तद्दानं राजस मस्मृतं॥४६

भावार्थ—जो पुरुष अपने उपकार करने वाले को और फल की इच्छा करके व किसी दबाव से दान को देता है वह रजोगुणी दान है।

अदेश काले यद्दानं अपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामस मुदाहृतम्।४७।

भावार्थ—जो दान देने वाला देश काल नहीं देखता अपात्र को दान देना है असत्कार और अपमान करके दान देता है वह दान तमो गुणी है।

॥ कर्म ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोयँ कर्म बन्धन।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त संग समाचर ॥४८

भावार्थ—जो कर्म से बंधन है वह ऐसा कि जो यज्ञादिक कर्म है उनसे विपरीत जो कर्म है उन कर्मों से बन्धन कहा है फल की इच्छा छोड़ि के जो यज्ञादिक कर्म किया जाता है उससे वन्धन नहीं होता।

सहयज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरो वाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तिष्ठ कामधुक ॥४९

भावार्थ—प्रजापति जो ब्रह्मा हैं सृष्टि काल में यज्ञ के सहित प्रजा को उत्पन्न करके बोले कि इस यज्ञ करके तुम वृद्धि को प्राप्त होगे यह यज्ञ तुम्हारे इच्छित कामना को देने वाली होगी।

देवान् भाव यताऽनेन ते देवा भाव यन्तुवः ।
परस्परँ भाव यन्तः श्रेयः परम वा प्स्यथ॥५०॥

भावार्थ—इस यज्ञ करके तुम देवताओं को प्रसन्न करो प्रसन्न होने से देवता तुम्हारी वृद्धि करेंगे जो ऐसा परस्पर भाव करोगे तो तुम्हारी दोनों की वृद्धि होगी ।

इष्टान् भोगन्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः ।
तै र्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुँक्ते स्तेन एवसः॥५१॥

भावार्थ—यज्ञ से प्रसन्न हुये देवता तुम को अन्न धन परिवार को प्राप्त करेंगे उनके दिये हुये जो अन्नादि तुमको मिला है उससे उनको भी भाग देकर भोजन करो ऐसा न करने से चोर समझे जावोगे अन्त में जो चोर की सज़ा होती है वही तुम्हारी भी होगी।

यज्ञ शिष्टा शिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्‍ बिषैः
भुँज्य न्तेत्वधं पापा येपचन्त्यात्म कार्णात्॥५२॥

भावार्थ—जो सत्पुरुष नित्य प्रति बलि वैश्व देवादि हवन करके उसका बचा हुआ अन्न खाता है वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है जो मनुष्य सिर्फ अपने खाने के लिये पका कर खा

लेता है और देवताओं का भाग नहीं देता वह मनुष्य पापी और पाप ही को अन्नादि रूप से खाता है।

कर्मणो बहि संसिद्धिः मास्थिता जनका दयः
लोक संग्रह मेवापिसँपश्यन् कर्त्तुं मर्हसि॥५

भावार्थ—देखिये जनकादि ज्ञानी लोग भी कर्म को किया कर्म ही करके उन लोगों को ज्ञान प्राप्त हुआ इस कारण संसार परम्परा देख करके कर्म करना योग्य है।

यद्यदा चरति श्रेष्ठ स्तत्तदेवेषु इतरोजनः।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्त्तते ॥५४॥

भावार्थ—जैसे २ श्रेष्ठ मनुष्य आचरण करता है वैसे जो उसके पीछे चलने वाले हैं करते हैं जिस प्रथा को श्रे मनुष्य प्रमाणिक कर देता है वही रास्ता लोक मान्य होता

यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्त्तते काम कारत
नससिद्धि मवाप् नोति न सुखँनपराङ्गतिम्॥५

भावार्थ—जो शास्त्र के विधि को छोड़ के कर्म को कर वह प्राणी न सुखी रहता है और न उसकी परांगति होती

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं चयत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न चतत् प्रेत्यनोइह ॥५६॥

भावार्थ—जो पुरुष बिना श्रद्धा के देता अथवा हवन करता अथवा तप करता वह कार्य्य असत् है उसका फल यहां और परलोक में भी नहीं प्राप्त होता ।

यः इन्द्रियाणि सँयम्य यआस्तेमनसा स्मन् ।
इन्द्रियार्थान् बिमूढात्माभिथ्या चारःसउच्यते॥५७॥

भावार्थ—जो पुरुष इन्द्रियों को सिकोड़ के परमात्मा का ध्यान करने बैठता है और मन इन्द्रियों के बिषय रूप, रस, गन्ध स्पर्श शब्द में लगाये रहता है वह संसार के दिखाने के लिये ढकोसला करता अर्थात् पाखंड करता है ।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्ण सुख दुःखेषुतथामानापमानयो॥५८॥

भावार्थ—जिस पुरुष का मन शान्त होकर परमात्मा में लग गया है वह पुरुष ठंढा और गरम सुख व दुःख मान अपमान को बराबर मानता है ।

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी सम लोष्ठास्म कांचनः॥५९॥

भावार्थ—जिस पुरुष को आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया है उसी में मन तृप्त रहता हैं और इन्द्रियों के जो विषय हैं रूप, रस, गंध स्पर्श शब्द इनको जीत लिया है, वही युक्त योगी है।

सुहृन्मित्रायुदासीन मध्यस्थ द्वेष्य वन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु सम बुद्धि र्विशिष्यते ॥६०॥

भावार्थं—मित्र जो है शत्रु जो है और जिससे मित्रता और शत्रुता दोनों नहीं है और अपने स्वजन, हमेशा अपना कुशल चाहने वाले और साधु और पापी इन लोगों के बारे में जिनकी समान बुद्धि है ऐसे योगी की बुद्धि श्रेष्ठ कहाती है।

योगी युंजीत सतत मात्मानं रहसिस्थितः।
एकाकी यत् चितात्मा निरासीर परिग्रहः॥६१॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने मन को निरन्तर एकान्त में बैठ कर परमात्मा में लगाता है निःशङ्क होकर आसा को छोड़ करके इन्द्रियों को वश में कर अकेला ही बैठा हुआ यतन किया करता है वह युक्त योगी कहाता है।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिर मासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नाति नीचँ चैलाजिन कुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रँ मनःकृत्वा यत्त चित्तेन्द्रिय क्रियः ।
उप विस्यासनेपु ञ्ज्याद्योलमात्मविशुद्धये॥६२॥

भावार्थ—पवित्र देश में अर्थात् पवित्र भूमि में आसन को विछावे न बहुत ऊंचा हो न नीचा हो पहिले कुश का आसन हो उसके ऊपर मृग चर्म हो उसके ऊपर वस्त्र विछावे आसन को स्थिर करके और मन को स्थिर करके अर्थात् मन को एकाग्र करके इन्द्रियों के जो विषय हैं उनसे मन को यत्न पूर्वक रोक करके आसन पर बैठ करके आत्मा के शुद्धि के लिये परमात्मा का ध्यान करै ।

समँ काय शिरो ग्रीवं धारयन्नचल स्थिरम् ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रस्वं दिसस्च नवलोकयन् ॥
प्रशान्तात्मा विगतभी ब्रंह्मचारी ब्रते स्थितः।
मनःसंयम्यमत्चित्तो युक्त आसीत्मत्परः॥६३॥

भावार्थ—शिर और गला और देह को सीधा करके अचल होकर स्थिरता को प्राप्त हो दिशा के तरफ से दृष्टि को हटा कर नासिका के अग्र भाग के तरफ देखे शान्ति आत्मा होकर भय को छाड़ करके ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित हो मन को यत्न पूर्वक परमात्मा के बिषे लगावै ।

युञ्जन्नवँ सदात्मानं योगी नियत मानसः ।
शान्ति निर्वाण परमांमत्सँस्थामधिगच्छति॥६४॥

भावार्थ—जो पुरुष नियम से अपने मन को परमात्मा में लगाता है और शान्ति पूर्वक परमात्मा के बिषे स्थिर होता है वह पुरुष मोक्ष पद को प्राप्त होता है ।

नात्यस्न तस्तु योगोस्ति न चैकान्त मनस्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥६५॥

भावार्थ—अधिक भोजन करने वाले का योग सिद्ध नहीं होता और न बिल्कुल भोजन न करने वाले का योग सिद्ध होता है न बहुत सोने वाले का योग सिद्ध होता हैं न बहुत जागने वाले को योग सिद्ध होता हैं।

युक्ता हार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्म सु ।
युक्त स्वप्ना ववो धस्य योगो भवति दुःखहा॥६६॥

भावार्थ—(प्रमाण के साथ) अर्थात् आधा पेट भोजन करना

चौथाई जलसे पूर्ण करना चौथाई खाली रखना विहार भी प्रमाण ही के साथ करना अर्थात् मासिक धर्म के बाद स्त्री प्रसंग करने से ब्रह्मचर्य कहा जाता है और कर्म के बारे में युक्त चेष्टा करनी चाहिये नियम से सोना चाहिये नियम ही से जागना चाहिये इस तरह से रहने में तकलीफ नहीं होती कार्य्य पूर्ण रीति से होता रहता है।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोमपास्मृता।
योगिनो यत चित्तस्य युंजतो योग मात्मनः॥६७॥

भावार्थ– जैसे जहां पर हवा नहीं जाती वहां का दीपक नहीं हिलता डोलता ऐसे ही यत्न करने वाले योगी का चित्त नहीं चलायमान होता दीप ही के समान योगी को शान्ति होना चाहिये।

भोगो न भुक्ता वय मेव भुक्ता,
कालो न जातः वय मेव जातः।
तपो न तप्तं वय मेव तप्तः,
तृस्ना न जीर्णा वय मेव जीर्णा ॥६८॥

भावार्थ– यह जीव भोग को नहीं भोगता केवल आयु को भोगता है समय नहीं व्यतीत होती केवल आयु व्यतीत होती है हम तप का संचय नहीं करते बल्कि इस देह की जो आयु है

उसी को व्यतीत करते हैं आशा नहीं वृद्ध होती केवल शरीर ही वृद्ध हो जाता है ।

भ्रान्तं देश विदेश दुर्ग बिष मम्प्राप्तं न किञ्चितफलं।
त्यक्त्वाजातिकुलाभिमानमुचितंसेवाकृता निस्फला॥
भुक्तं मान विवर्जितँ पर गृहे सा शंकया काकवत्।
तृस्ने दुरमतिपाप: कर्मनिरतेऽद्यापिसन्तुष्यति॥६६॥

भावार्थ—देश परदेश महा कठिन २ स्थानों में भ्रमण किया पर मुझ को कुछ नहीं फल प्राप्त हुआ जाति कुल अभिमान को छोड़ करके अनुचित सेवा भी किया तहां भी कुछ फल प्राप्त न हुआ मान को छोड़ करके शंका पूर्वक काग के समान भोजन भी कर लिया तिस पर भी कुछ फल प्राप्त न हुआ लाचार होकर तृस्ना से विनय करता हूं कि हे तृस्ने पाप कर्म को करने वाली अब सन्तोष को प्राप्त हो जा ।

आशाहि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं ।
आशापास विनिर्मुक्ता सुखं सुष्वापपिङ्गला ॥७०॥

भावार्थ—आशा महा दुःख को देने वाली होती है आशा को छोड़ने से मनुष्य सुखी रहता है ।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ।
विद्या काम दुघा धेनुःसन्तोषं नन्दनं वनं ॥७१॥

भावार्थ—क्रोध यम है आशा वैतरणी नदी है अर्थात् रक्त मज्जा, मांस से भरी हुई आशा रूपी यह नदी है विद्या काम धेनु है अर्थात् कर्म उपासना ज्ञान को देने वाली है सन्तोष नन्दन वन है अर्थात सुख को प्राप्त करने वाला हैं।

तपो विद्या च विप्रस्य निश्रेयस करं परम ।
तपसा कल्मशं हन्ति विद्यया मृत मस्तुते ॥७२॥

भावार्थ—तप और विद्या विप्र को अति कल्याण देने वाली होती है तपस्या करने से पाप छूट जाता है विद्या अर्थात् ज्ञान करके मोक्ष प्राप्त होता है।

सर्वेषां यःसुहृन्नित्यं सर्वेषां चहितेरतः ।
कर्मणा मनसा वाचा सधर्मम्वेद अजाजले ॥७३॥

भावार्थ—जो सब का मित्र है और सब लोगों के हित करने में तत्पर रहता हैं मन से वाणी से कर्म से जो पुरुष इसको करता है वही धर्मात्मा है।

येके सत् पुरूषापरार्थं घटिकास्वार्थं परित्य ज्यये।
सामान्यास्तुपरार्थं उद्मिभृता स्वार्था विराधोनये
तेमी मानुष राक्षसा परं हितंस्वार्थाय निघ्नन्तिये
ये निघ्नन्ति निर्थकं परहितं तेके न जानीमहे॥७॥

भावार्थ—मनुष्य चार प्रकार के होते हैं एक सतपुरुष होते हैं जो अपने स्वार्थ को त्याग करके दूसरे के उपकार में तत्पर हो जाता है दूसरा मध्यम पुरुष होता है जो अपना स्वार्थ साधन करता और दूसरे का उपकार भी करता है और तीसरा राक्षस पुरुष होता है जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के कार्य को नाश कर देता है चौथा पुरुष वह है जो न अपना स्वार्थ साधन करता और दूसरे का जो हित कार्य्य है उसको भी नाश कर देता है उसका नाम हम नहीं कह सक्ते क्या हैं।

जाड्यँधियो हरति सिंचति वाचि सत्यं,
मानोन्नति दिशति पाप मपा करोति
चेतःप्रसादयति दिक्षु वितनोति कीर्तिं,
सत् सङ्गतिःकथय किन्न करोतिपुँ साँ॥७॥

भावार्थ—सतसंगति पुरुष को क्या नहीं बना देती अर्थात् जड़ बुद्धि को हर लेती है सत्य को हृदय में प्राप्त कर देती मान को बढा देती है पापी को अपापी कर देती है बुद्धि प्रसन्न कर देती है कीर्ति को संसार में फैला देती है।

लज्जा गुणौघ जननी जननी मिवस्वा,
अत्यन्त सुद्ध हृदया मनु वर्तमानाँ ।
तेजस्विनः सुख मसुन्नपिसं त्यजन्ति,
सत्यव्रत व्यसनिनो नपुनः प्रतिज्ञाम्॥७६॥

भावार्थ—लज्जा सब गुणों की माता है इस कारण से अपने माता के समान है लज्जा के साथ शुद्ध हृदय से वर्ताव करना चाहिये तेजस्वी पुरुष प्राण को त्याग देते हैं पर लज्जा को नहीं त्यागते ।

दाक्षिण्यंस्वजनेदयापरजनेशाठ्यँ सदादुरजनो
प्रीतिःसाधु जने नयो नृप जने विद्वज्जनेष्वाजवम् ॥
शौर्य्यं शत्रु जने क्षमा गुरु जने नारी जने धूर्त्तता ।
येचैवं पुरुषा कलासु कुशला तेष्वेव लोकास्थितिः।७७।

भावार्थ—अपने हित परिवार, सम्बंधी, भाई, की रक्षा करना दूसरे पर दया रखना दुष्ट प्राणी से मेल न रखना बल्कि उसको कष्ट पहुंचाने का उपाय करना. उत्तम पुरुष से मेल रखना राजाओं से नम्र रहना, विद्वानों में सरल अर्थात् सीधे पन से रहना, शत्रु के सामने बीर बना रहना, बड़े लोग अप्रसन्न भी हों तो सहन कर लेना, स्त्री से उनके मन की बात करना जो पुरुष इन सब कलाओं में कुशल हैं उन्हीं की इस संसार में स्थिती अर्थात रह सकते हैं ।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविसतु गच्छतु वायथेष्टं ।
अद्यैव वा मरण मस्ति युवान्तरे वा,
न्यायात पथः प्रविचलँन्ति पदँ नधीरा॥७८

भावार्थ—नीति निपुण पुरुष की निन्दा हो अथवा स्तु
हो धन रहै, अथवा न रहै, आज ही मृत्यु को प्राप्त हो अथ
सौ बरस के पश्चात हो परन्तु धीर पुरुष न्याय पद से पैर
नहीं हटाते ।

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितँ च समाचरेत् ।
प्रशक्तश्चेत इन्द्रियार्थेषु प्रायश्चितीभवेन्नरः॥७९

भावार्थ—जो मनुष्य वेद के स्मृति के अनुसार कार्य न
करता और निन्दित कर्म को इन्द्रियों के सुखार्थ करता है
पुरुष प्रायश्चित्ती होता है अर्थात् प्रायश्चित करने का अधि
कारी होता है ।

विपति धैर्य्य मथाभ्युदये क्षमा
सदसिवाक पटुता युद्धि विक्रमः
यशसि चाभि रूचि व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृति सिद्धि मिदंही महात्मनाम ॥८०

भावार्थ—विपत्ति में धीरजको धारण करना औरउच्च पदपा करके क्षमा करना, सभा में बुद्धि मती वाणी को प्रकाश करना, युद्ध में अपने पराक्रम को दिखलाना अपने यश बढ़ाने के लिये हमेशा उपाय करना, वेद और शास्त्र को हमेशा देखते रहना ये सज्जन पुरुष के स्वाभाविक गुण होते हैं।

अकरूणत्वा कारण विग्रह पर धनेपरयोषित चस्पृह स्वजनवन्धु जनेषु सहिष्नुता प्रकृति सिद्धि मिदंहिदुरात्मनाम

भावार्थ—दया से रहित होना बिना कारण के लड़ाई झगड़ा करना पराये धन व स्त्री के वास्ते इच्छा करना अपने वन्धु व मित्र से द्वेष रखना यह गुण दुष्टों के स्वाभाविक होते हैं।

मृग मीनसज्जनानां तृण जल सन्तोष वृतीनां।
लुब्धक धीमर पिशुना निष्कारणं वैरिणो जगत्॥

भावार्थ—मृग और मछली और सत पुरुष ये सब कर्म से तृण और जल और सन्तोष से अपना निर्वाह करते हैं तिस पर भी बिना कारण शिकारी और कहार और चुगुल दुशमन की तरह इनके साथ शत्रु का बर्ताव करते हैं।

अस्मिन्महामोहमयेकटाहेसूर्याग्निनारात्रिदिवेन्धनेन मासर्तु दर्वीपरिघट्टनेनभूतानिकालःपचतीतिवार्ता।८

भावार्थ - यह संसार महा मोह रूपी कराह है सूर्य्यभगवान जिसमें अग्नि हो रहे हैं रात दिन जिसमें लकड़ी हो रही है ऋतु चिमचा हो रहे हैं जिससे चलाया जाता है और काल से सारी जीवों की आयु,को महा,मोह रूपी कराह में छोड़ २ के भस्म किया करता है यही कार्य्य अथवा वार्ता प्रत्येक समय हो रहा है।

दिवस स्याष्टमे भागे शाकम्पचति स्वगृहे
अनृणी चा प्रवासी च सवारि चरमोदते ८४

भावार्थ—जो पुरुष दिन के अन्त में शाक से अपना निर्वाह करता है और उसी से अपना दिन काटता है पर किसी का ऋणी नहीं है और किसी के अधीन नहीं है वही पुरुष सुखी है।

श्रुतयःप्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं,
नैको मुनिर्यस्य मतः प्रमाणं
धर्मस्य तत्वं निहतो गुहायां,
महाजनो येन गतः सपन्थो ८५

भावार्थ—वेद का प्रमाण स्मृति का प्रमाण बहुत से आचार्यों का प्रमाण और धर्म शास्त्र के बिचार का तत्व क्या है और इन सब मतों के बिचार पूर्वक जिस रास्ते पर सत्पुरुष लोग चले आये हैं उसी मार्ग को ग्रहण करना चाहिये।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यमालयँ ।
शेषा स्थवार मिच्छन्ति किमाश्चर्यं मिदँमहत् ॥८६॥

भावार्थ—हम लोग देखते हैं कि रोज २ नमालूम कितने जीव यम लोक चले जाते हैं और जो कुछ धन माल को धर्म अधर्म न बिचार के बटोरते हैं यहीं रह जाता है फिर लौट करके उस धन को ग्रहण करने के लिये नहीं आते माता पिता पुत्र स्त्री बन्धु मित्र सब लोग उसका उपकार व पालनादि को भूल जाते कभी ख्याल तक नहीं करते कदाचित कभी स्वप्न में देखें तो उसका दोष मानते हैं और कहते हैं कि मरे आदमी से भेंट हुआ बड़ा अरिष्ट हुआ यह सब देख कर तिस पर भी जो प्राणी जीवित हैं उनकी तृस्ना धनादि से नहीं हटती धर्म अधर्म का बिचार न करके धनादि को उपार्जन करते हैं इस संसार में इससे और क्या आश्चर्य होगा ।

नास्ति बुद्धि अयुक्तस्य नचायुक्तस्य भावना
नचा भाव यतः शान्ति रसान्तस्य कुतः सुखम् ८७

भावार्थ—जिस की बुद्धि स्थिर नहीं है और जिस की भावना स्थिर नहीं है और अभाव के फन्दे में फसा है तब तक जीव शान्ति को नहीं प्राप्त हो सकता और जब तक शान्ति नहीं है तब तक यह जीव सुखी नहीं होगा ।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्य मात्म निवेदनम् ।२।

भावार्थ—परमात्मा का गुणानुवाद सुनना और उपदेश करना स्मरण करना उसके चरणार्विन्दों का ध्यान करना उसका पूजन करना और दास भाव से बन्दना करना और परमात्मा को अपना हित जान करके अपने हृदय रूपी गुफा में जो परमात्मा सदैव वास करता है उसी को यह जीवात्मा को समर्पण कर देना चाहिये।

सानँदं सदनं सुतास्च सुधियः कान्ता मृदुः भाषणी।
इच्छा पूर्तिधनं सुयोषितरता स्वाज्ञा परा सेवकाः।
आतिथ्यँ शिव पूजनं प्रति दिनं मिष्टान्न पानँ गृहे।
साधोः संग मुपासते च सततँ धन्यो गृहस्था श्रमः॥

भावार्थ—जिसका मकान उत्तम रीति से आनंद देने वाला बना है जिस गृहस्त के पुत्र कन्या विद्वान और बुद्धिमान हैं जिसकी स्त्री मीठा भाषण करने वाली है जिस पुरुष के इच्छा मुताबिक कार्य करने के लिये धन प्राप्त है और स्त्री सुन्दरी है नौकर आज्ञा कारी है जिसके यहां नित्य ही अथिति आकर भोजन पाते हैं और शिव का पूजन भी हुआ करता है अन्न, जल, उत्तम अपने मुताबिक मिलता है और सदैव सत

पुरुषों के साथ सत् वार्ता हुआ करती है वह गृहस्थ इस संसार में धन्य है।

यथा नदी नदाःसर्वे सागरे यान्ति सँस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणःसर्वे गृहस्थे यान्ति सँस्थितिम्॥६०

भावार्थ—जैसे नदी और नद समुद्र में जाकर शान्ति हो जाते हैं ऐसे ही जितने आश्रमी हैं गृहस्थाश्रमी के यहां स्थिति को प्राप्त होते हैं।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वं जन्तवः ।
तथा गृहस्थ माश्रित्य वर्त्तन्तेसर्वेआश्रमाः ॥६१

भावार्थ—जैसे वायु का आश्रय लेकर सब जीव सुखी होते हैं उसी भांति गृहस्थ को पाकर सब आश्रमी सुखी होते हैं।

यस्मात् त्र्योप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्तेतस्मा ज्ज्येष्ठा श्रमोगृही॥६२

भावार्थ—जिससे ब्रह्मचारी और तपस्वी और संन्यासी दान और अन्न लेकर सन्तुष्ट होते हैं इसी कारण से गृहस्थाश्रम सदा ज्येष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ होता है।

ब्रह्म चर्य्याश्रमँ समाप्य गृही भवेत् गृही ।
भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ ९३

भावार्थ—ब्रह्मचर्य्याश्रम से गृहस्थ होना, गृहस्थसे वाण प्रस्थाश्रम को जाना वाण प्रस्थ से सन्यास होना धर्म है ।

एवँ गृहाश्रमेस्यित्वा बिधि वत्स्नातको द्विजः ।
वने तु नियतो यथावद्विजिते न्द्रियः ॥९४

भावार्थ—विधि पूर्वक गहस्था श्रम को भोग करके वाण प्रस्थ होना मन को स्थिर करके जितेन्द्रिय होके रहना चाहिये ।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वली पलित मात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यँ तदारण्यँ समाश्रयेत् ॥९५

भावार्थ—गृहस्थ जब वृद्धावस्था को प्राप्त हो और पौत्र उत्पन्न होगया हो तब वाण प्रस्थ लेवे ।

सँत्यज्य ग्राम्य माहारँ सर्वं चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निः क्षिप्य वनं गच्छेत्सहैववा ॥९६

भावार्थ—गृहस्थी का जो अहारादिक सुख त्याग करके पुत्र को स्त्री को सौंपे अथवा साथ लेकर वन को जाय ।

अथ वाण प्रस्थाश्रम

अग्निहोत्रं समादाय गृह्याग्नि परिच्छदम् ।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥९७॥

भावार्थ—अग्नि होत्र सामान सहित लेकर ग्राम से जंगल जाकर जितेन्द्रिय होकर वास करे ।

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाक मूल फलेन वा ।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधि पूर्वकम् ॥९८॥

भावार्थ—तिन्नी के चावल अथवा अनेक प्रकार के जंगल के फलों से पंच महायज्ञ विधि पूर्वक नित्य प्रति किया करे ।

स्वाध्याये नित्य युक्तःस्याद्दान्तो मैत्रःसमाहितः
दाता नित्यमनादातासर्वं भूतानुकम्पकः ॥९९॥

भावार्थ— स्वाध्याय करना, प्राणियों से मित्र भाव रखना विद्या पढ़ाना संसारी जीवों पर दया करना ।

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेष्व ममश्चैव वृक्षमूल निकेतनः ॥१००॥

भावार्थ—सुख के लिये उपाय न करना, ब्रह्मचर्य से रहना शरण आने वाले को तिरस्कार नहीं करना, वृक्ष के नीचे वास करना धर्म है ।

बनेषु चनिहत्त्येवं तृतीय भाग मायुषः ।
चतुर्थ मायुषं भागत्यक्त्वासङ्गान्परिब्रजेत्॥१०१

भावार्थ—आयु का तीसरो भाग जंगल में वितावै चौथा भाग जब आयु रह जाय तब संग को छोड़ करके अर्थात् कर्म को त्याग करके सन्यस्थ होकर पृथवी में पर्यटन करै।

ब्रह्मा येन कुलाल व न्नियमितो ब्रह्माण्ड माण्डोदरे
विष्णु येन दशा वतार गहने न्तिप्तो महा संकटे
रुद्रो येन कपाल पाणि पुटके भिज्ञाटनं कारिन:
सूर्यो भ्राम्यत्तिनित्यमेवगगनेतस्मैनमः कर्मणे १०२

भावार्थ—जिस कर्म करके ब्रह्मा (कुम्हार का कार्य किया) अर्थात् सृष्टि का करना; जिस कर्म करके विष्णु भगवान दस अवतार लेकर महा संकट को प्राप्त हुव, जिस कर्म से महादेव हाथ में खोंपड़ी लेकर भिक्षाटन किया, जिस कर्म से सूर्य्य भगवान नित्य प्रति आकाश में तपते हैं इस कारण से अब मैं कर्म को नमस्कार करता हूं और सन्यस्थ को प्राप्त होता हूं।

भोगे रोगभयं कुलेच्यु तिभयँ वित्ते नृपालात् भयँ
मौने दैन्य भयँ वले रिपुभयं रूपेजराया भयं

शास्त्रेवादभयं गुणेखलभयं कायेकृतान्तात्भयं
सर्वंवस्तुभयान्वितंभुविनृणांवैराग्यमेवाभयम् १०३

भावार्थ—भोग से रोग होता है, कुलीन होने से अपमान का डर होता है, धन होने से राजा का भय होता है चुपचाप रहने से बेवकूफ बनना पड़ता, बल होने से शत्रू का भय होता है रूपवान होने से वृद्धावस्था का भय होता है विद्वान होने से शास्त्रार्थ में हार जाने का भय होता है गुणी होने से खलों का भय होता है, इस देह को मृत्यु का भय होता है, इस पृथवी में सब वस्तु भय को देने वाली है केवल वैराग्य यह अभय को देने वाला है।

तावत् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुको विपिनेयथा।
नगर्जन्ति महाशक्तिः यावत वेदान्तकेशरी ॥१०४
।

भावर्थ—तब तक शास्त्र गर्जता अर्थात् कर्म उपासना ज्ञान को उपदेश देता है जब तक जंगल में सिंह नहीं आता तब तक सियार ही मालिक होता है, जब सिंह रूपी वेदान्त शास्त्र प्राप्त हो जाता है तब सियार रूपी शास्त्र भाग खड़े होते हैं।

मोक्षस्य नहिं वासोस्ति नग्रामान्तर मेवच।
अज्ञानहृदय ग्रन्थी नाशो मोक्ष इतिस्मृतः ॥१०५

भावार्थ—मोक्ष का कहीं वास नहीं है और न कहीं गांव

बसा हुआ है हृदय की जो अज्ञानता है उसी के छूट जाने से मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

प्रणवोधनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्य उच्यते।
अप्रमत्तेन वेधव्यं सस्वरः तन्मयो भवेत् ॥ १०६

भावार्थ—प्रणव जो ओंकार है उसका धनुष बनावै और आत्म रूपी जो मन है उस का वाण बनावैं ब्रह्म जो हृदय स्थित् परमात्मा है उसको निशाना बनावैं होश हवास के सहित मन रूपी वाण को परमात्मा रूपी निशाने में लगावैं तब वह मन और जीव परमात्मा में लय हो जाते हैं।

माता नास्ति पिता नास्ति नास्तिबन्धु सहोदरँ
पुत्रंनास्ति गृहँनास्तितस्मात्जागृहजागृह॥ १०७

भावार्थ—माता पिता सहोदर भाई पुत्र गृह यह सब कोई अपने नहीं हैं और न अन्त में काम आते हैं इस कारण से संसार रूपी रात्रि से जागते हुए परमात्मा में मन को पकड़ के लगा देना चाहिये।

नमेमृत्यु शंकानमे वर्णं जातिः,
पिता नैव मेनैव माता न जन्म,
न बन्धुर्नमित्रं गुरूनैव शिष्यः,
सच्चिदानंदरूपःशिवः केवलोहम् १०८

भावार्थ—हम को मरण हो जाने का भय नहीं मेरा कोई वर्ण व जाति नहीं मेरे पिता माता नहीं मेरा जन्म और भाई मित्र गुरू, चेला, कोई नहीं मैं सत् चित् आनंद साक्षात् कल्याण रूपी केवल शिव हूं।

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो,
न ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्य शूद्रा
नब्रह्मचारी नगृही वनस्थो
भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः॥ १०९

भावार्थ—मैं मनुष्य नहीं हूं न देवता न यक्ष न ब्राह्मण हूं न क्षत्री वैश्य शूद्र हूं मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थी नहीं हूं और सन्यासी भी नहीं हूं मैं निज बोध रूप परमात्मा हूं।

आकाश वत् अनन्तोहं घटवत् प्राकृतंजगत
इति ज्ञानं तथैतस्यनत्यागोनग्रहोलयः॥ ११०

भावार्थ—मैं आकाश के समान हूं मेरा अन्त नहीं है यह संसार घड़ा व मठ देह रुपी है मैं इन सब में और सारे संसार में सर्वत्र व्याप्त हूं इस संसार में कोई वस्तु त्यागने योग्य अथवा ग्रहण करने योग्य नहीं हैं जब इस संसार रूपी देह का जो संसर्ग होगया तो इसी संसार में विचरते हुए शरीर को त्याग देना चाहिये।

दृष्टि पूतँ न्यसेत् प.दं बस्त्र पूतं जलँ पिवेत्
सत्य पूतँ वदेत् वाचं मनःपूतंसमा चरे ॥१११

भावार्थ—दृष्टि से देखि के ज़मीन में पैर रखना चाहिये वस्त्र से छान करके जल पीना चाहिये सत्य से भरी हुई वाणी बोलना चाहिये मन को पवित्र करके सारे संसार को मित्रभाव देखना चाहिये।

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगाद्यत्तयः
शुद्ध सत्वाः ॥
ते ब्रह्म लोकेषु परान्त काले परामृताः परि
मुच्यन्तिसर्वे ॥११२

भावार्थ—जो यती शुद्ध मन से वेदान्त जो विज्ञानहै देखता है वह निश्चय करके सन्यस्थ को प्राप्त होता है वह सन्यासी ब्रह्म लोक में प्राप्तहोकर आवागवन से रहित अर्थात्छूट जाताहै

अध्यात्म रतिरासीनो निर्पेक्षो निरामिष
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ११३

भावार्थ—हृदय स्थित जो परमात्मा है उसी में मन को स्थित किये हुये और इच्छा से रहित मद्यमांस को त्यागे हुए

अपने आत्मा ही के सहायता से सुखी होकर संसार में उपदेश देते हुये विचरै।

अथ सन्यास धर्मारम्भः

क्लिप्त केश नखस्मश्रुः पात्री दंडी कुसुम्भवान्
विचरे न्नियतो नित्यँ सर्व भूता न्यपीडयन्॥११४

भावार्थ—केश, नख, दाढ़ी, मोछ, मुड़ा करके कमंडल और दंड लेकर गेरू का रंगा हुआ वस्त्र धारण कर परमात्मा को हृदय में निश्चय करके किसी को दुख न देते हुए संसार में नित्य ही विचरता रहै।

इन्द्रयाणा निरोधेन रागद्वेष क्षयेनच
अहिंसया च भूताना ममृतत्यापकल्पयेत ११५

भावार्थ—इन्द्रियां अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कान, नाक, जीभ चर्म नेत्र कर्म इन्द्रियां अर्थात् वाणी, हाथ, पैर, गुदा लिंग इनके जो विषय हैं उनमें लिप्त होकर और समता ईर्षा से रहित संसार में किसी तरह से दुःख किसी को न पहुंचाते हुये जो सन्यासी विचरता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

यतीनां कांचनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्म चारिणम्
चौराणाम भयँ दद्यात्स नरो नरकं ब्रजेत् ११६

भावार्थ—जो पुरुष यती अर्थात् सन्यासी को द्रव्य देता है

और ब्रह्मचारी को पान देता है चोर को दिलासा देता है वह पुरुष नरक को प्राप्त होता है ।

राजधर्म प्रारम्भः

विद्वत्वँ च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचनः ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वानसर्वत्र पूज्यते ॥११७

भावार्थ—विद्वान अर्थात् ज्ञानी और राजा की समता नहीं होती राजा केवल अपने राज में प्रतिष्ठा को पाता है और विद्वान सब देश में प्रतिष्ठा को पाता है ।

राज धर्मान् प्रवक्ष्यामि यथा बृत्तो भवेत्तुयः
सम्भवस्य यथा तस्य सिद्धिश्चपरमायथा॥११८

भावार्थ—अब राज धर्म कहा जाता है कि जैसे राजा को राज धर्म में दक्ष होना चाहिये और जैसा उसका सहायक और वर्त्ताव होना चाहिये जिससे उसके परम कार्य्य की सिद्धी होगी उसको कहता हूं ।

सराजा पुरुषो दंडः स नेता शासितस्चसः ।
चतुर्णामाश्रमाणांच धर्मस्यप्रतिभूः स्मृतः। ११९

भावार्थ—जो दंड है वही पुरुष है इसी दंड पुरुष करके जो राजा नीति के साथ शासन करता है और चारों वर्णों के धर्म को जानने वाला और अपने २ वर्णाश्रम के मुताबिक शासन

चलाने वाला होता है उसी राजा की प्रजा सुखी रहती है और राजा को अपना स्वामी समझती है।

दंडः शास्ति प्रजा सर्वाः दंडएवाभिरक्षति ।
दंडः सुप्तेषु जागर्ति दंडं धर्म विदुर्बुधाः॥१२०

भावार्थ—राजा दंड ही से प्रजा का शासन करता है दंड ही करके सबतरह से रक्षा करता है दंड ही के सम्रक्षण करके सोता है और दंड ही के सहारे से कार्य करते हुए जागता है।

समीक्ष्य सधृतः सम्यक् सर्वारञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥१२१

भावार्थ—जो दंड विचार पूर्वक धारण किया जाता है तो उस राजा की प्रजा सुखी रहती है और राजा भी सुखी रहता है और जो दंड विना विचार किया जाता है उस राजा की प्रजा दुखी रहती है और वह राजा थोड़े ही काल में विनाश को प्राप्त होता है।

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्व शास्त्र विशारदम्।
इङ्गिताकार चेष्टज्ञं शुचिदक्षंकुलो द्गतम् ॥१२२

भावार्थ—विद्वान को दूत करना चाहिये और दूत कुछ तेजस्वी भी हो पवित्रता से रहता हो और कार्य्यों में तन मन से दक्ष रहता हो और उत्तम कुल से उत्पन्न हो।

अनुरक्तः शुचि र्दक्षः स्मृतिमान देशकाल वित्
वपुष्मान् वीतभिर्वाग्मो दूतो राज्ञः प्रसस्यते॥ १२३

भावार्थ—वह दूत ऐसा हो कि राजा के काम अत्यन्त उत्साह प्रीति युक्त निष्कपटी पवित्र मन वाला कार्यों के बारे में तत्पर बहुत दिन तक बात को ख्याल रखने वाला देश काल समय को जानने वाला देह दसा से उत्तम भय से रहित बात चीत करने में तेज हो ऐसा दूत राजा के लिये शुभ दायक होता है।

आमात्ये दण्ड मापत्तौ दण्डवैनेकी क्रिया।
नृपतौ कोष राष्ट्र च दूते सन्धि र्विपर्ययौ ॥ १२४

भावार्थ—मंत्री को राजा दंडधिकार अर्थात् दंड देने में सलाह कार रखें जिससे अनीति न होने पावे राजा स्वतः अपने आधीन खज़ाना और राजा का कार्य्य रक्खे परन्तु सभा द्वारा से करै और दूत को मेल करना व वैर करने का अधिकार देवे।

अलब्धं चैव लिप्सेत् लब्धँरक्षेत् प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्धयेत् चैववृद्धिं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥१२५

भावार्थ—राजा और राज समाजों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य्य प्राप्त नहीं हुआ है उसका उपाय करना और प्राप्त

हुआ है उसकी रक्षा करना रक्षित द्रव्यादि वस्तु को बढ़ाना बढ़े हुए वस्तु को सुपात्र विद्या दान वगैरह में खर्च करना उचित है ।

अमायैव वर्त्तेत् नकथंचन मायया ।
बुद्ध्येतारि प्रयुक्तांच मायान्नित्यं स्व संवृतः ॥ १२६

भावार्थ—कदापि किसी से छल पूर्वक वर्ताव न करै निष्कपट होकर सब से वर्ताव रखे और अपने रक्षा के लिये शत्रु के किये हुये छल कपट को जानके सदैव उपाय करके बचाता रहै ।

यथोद्धरति निंदाता कक्षं धान्यं चरक्षति ।
तथा रक्षेत् नृपोराष्ट्रं हन्याच्चपरि पंथिनः ॥ १२७

भावार्थ—जैसे धान कूटने वाला भूसी को निकाल देता चावल को टूटने नहीं देता ऐसे ही राजा अपने राज को रक्षा करै चोर डाकू दुष्ट बेईमान झूठा कागज बना के गरीबों को दुःख पहुँचाने वाले धोखे बाजों को राज से निकाल कर पूजा को सुख पहुंचावै ।

मोहात् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षं.पत्यनुपेक्षया ।
सोऽचिरात्भ्रष्टतेराज्या जिविताच्चसबान्धवः॥१२८

भावार्थ—जो राजा लोभ वश होकर अपने राज के प्रजा को दुख देता है वह बहुत शीघ्र अपने जीवन ही के समय में अपने बन्धुओं के सहित राज से भ्रष्ट होजाता है

ये कार्य्यं के भ्यो अर्थमेव गृन्हीयुः पाप चेतसः ।
तेषां सर्वस्व मादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥१२६

भावार्थ—जो राज कर्मचारी घूस लेकर वादी अथवा प्रतिवादी के साथ अन्याय करे तो राजा उसका कुल धन हरण करके देशान्तर को निकाल देवे ।

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्ट प्रकृति मेवच ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥ १३०

भावार्थ—धर्म को जानने वाला और आज्ञा कारी शान्त्यात्मा मित्र के सुख से सुखी होना दुख से दुखी होना स्थिरता से कार्य्य को करने वाला ऐसा मित्र छोटा आदमी भी हो तो भी सुखदायक होता है ।

अदण्ड्या दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदंडयन्
अयशो महदाप्नोति नरकं चैवगच्छति ॥ १३१

भावार्थ—न सजा देने वाले को सजा देना और सजा देनें वाले को न सजा देना वह राजा अपयश का भागी होता है । और अन्त में नरक को गमन करता हैं ।

वाकदंडं प्रथमं कुर्यात् धिग्दंडं तदनन्तरम् ।
तृतीय धन दंडँतु वध दण्ड मतः परम ॥ १३२

भावार्थ—राजा को चाहिये कि प्रथम थोड़ा अपराध हो

तो डांट फटकार देवे दूसरीवार फिर अपराध करै तो धिक्कार देवे तीसरे अपराध पर जुरमाना करै चौथे अपराध पर देश निकाला कर देवें।

दुर्मन्त्र्यात् नृपतिर्विनस्यति यतिः सङ्गात् सुतो लालनात् विप्रो न ध्ययनात् कुलं कुतनयात्।
शीलं खलो पासनात् ह्रीर्मद्यात् अनवे क्षणा द्पिकृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयात्।
मैत्री चा प्रणयात् समृद्धिर न यात् त्यागात् प्रमा द्धाद्धनम् ॥ १३२

भावार्थ—दुष्ट व लोभी मंत्री होने से राजा का विनाश होता है अधिक मनुष्यों के साथ होने से सन्यासी का धर्म जाता रहता है अधिक प्यार करने से पुत्र के लिये खराबी पहुंचती है न पढ़ने से ब्राह्मण का विनाश होता है दुष्ट पुत्र होने से कुल का धर्म जाता रहता है दुष्ट के साथ होने से शील का नाश होजाता है मद्य पान करने से लज्जा जाती रहती है हमेशा खेती को न देखने से खेती का नाश होजाता है। अधिकतर बाहर रहने से स्नेह छूट जाता है अधिक हाव भाव न करने और आदर न करने से मित्रता जाती रहती है अधिक कलह करने से इज्जत और प्रतिष्ठा में हानि आती है प्रमाद से धन खर्च करने से धन का नाश होजाता है।

॥ सतोपदेश रहस्य गुटिका समाप्त ॥

बालार्क प्रेस बहराइच।